बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 284

खाद्य तेल का उत्पादन

भारत ने रिफाइंड और प्रसंस्कृत पाम ऑयल के आयात को सीमित किया है। यूरोपीय संघ ने भी परिवहन ईंधन के रूप में पाम ऑयल के इस्तेमाल को चरणबद्ध रूप से समाप्त करने का प्रस्ताव रखा है। ये दोनों वैश्विक पाम ऑयल क्षेत्र में बड़ा बदलाव लाने वाले हो सकते हैं। भारत और यूरोपीय संघ इंडोनेशिया और मलेशिया से पाम ऑयल के सबसे बड़े आयातक हैं। दुनिया के कुल उत्पादन में इन दोनों देशों की हिस्सेदारी 85 प्रतिशत है। आयात को लेकर भारत के निर्णय पर भले ही मलेशिया के प्रधानमंत्री महातिर मोहम्मद की जम्मू कश्मीर तथा नए नागरिकता कानून पर टिप्पणियों का असर हो लेकिन इसकी जरूरत लंबे समय से महसूस की जा रही थी। ऐसा इसलिए ताकि घरेलू खाद्य तेल उद्योग को बचाया जा सके। यूरोपीय संघ का कदम पाम ऑयल की खेती के पर्यावरण संबंधी दुष्प्रभावों से प्रेरित है। इसके चलते वन क्षेत्र में कमी आई और तमाम जीवों का रहवास नष्ट हुआ। इसमें दो राय नहीं कि पाम ऑयल की आपूर्ति करने वाले देश विश्व व्यापार संगठन में इसे चुनौती देंगे लेकिन इसका असर शायद ही हो क्योंकि मामला व्यापार से अधिक पर्यावरण से संबंधित है।

भारत के निर्णय पर भी विश्व व्यापार संगठन की शरण ली जाएगी या नहीं यह अभी तय नहीं है। प्रथम दृष्ट्या लगता नहीं कि इससे किसी स्थापित अंतरराष्ट्रीय व्यापार व्यवहार को क्षति पहुंची हो। न तो यह किसी देश से संबंधित है और न ही आयात पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है। इसके तहत केवल रिफाइंड पाम ऑयल के आयात के लिए पूर्व अनुमति को आवश्यक किया गया है। बहरहाल, मलेशिया की अर्थव्यवस्था पर इसका असर अवश्य पड़ेगा। पाम ऑयल मलेशिया का सबसे बड़ा कृषि निर्यात उत्पाद है और उसके सकल घरेलू उत्पाद में इसकी हिस्सेदारी 2.8 फीसदी है। आश्चर्य नहीं कि मलेशिया कीमतों में रियायत के साथ-साथ पाम ऑयल के बदले भारत से चीनी और भैंसे के मांस के आयात में बेहतर सौदेबाजी पर विचार करे। उधर, इंडोनेशिया को कारोबार बढ़ने से लाभ मिलने की आशा है।

भारत की बात करें तो विदेशों से रिफाइंड पाम ऑयल की अबाध आवक रोकने का यह बेहतर अवसर है। मलेशिया नियमित रूप से अपने पाम ऑयल शुल्क ढांचे में बदलाव करता रहता है ताकि रिफाइंड ऑयल के निर्यात को बढ़ावा दिया जा सके। इससे भारतीय खाद्य तेल उद्योग को नुकसान पहुंचता है। उसने खाद्य तेल की रिफाइनिंग क्षमता में भारी निवेश किया है लेकिन उसका अधिकांश हिस्सा अभी इस्तेमाल नहीं हो रहा। औसत क्षमता इस्तेमाल घटकर 46 प्रतिशत रह गया है। कई छोटे और मझोले स्तर की रिफाइनरी बंद हो गई हैं जिससे हजारों लोग बेरोजगार हो चुके हैं। सस्ते आयात ने घरेलू खाद्य तेल कीमतों को कम रखा जिसका नुकसान स्थानीय तिलहन किसानों को उठाना पड़ा। घरेलू तिलहन उत्पादन के मांग से तालमेल न बिठा पाने की यह भी एक वजह है।

पाम ऑयल की खेती के मामले में अभी भारत में काफी कुछ किया जाना है। इस दिशा में केवल सरकारी प्रोत्साहन से बात नहीं बनेगी क्योंकि जमीन की उपलब्धता और पौधों को तैयार होने में लगने वाला लंबा वक्त भी बाधा है। भारत में अन्य फसलों का उत्पादन बढ़ाने और वृक्ष आधारित तेल की मदद से खाद्य मेल की कमी दूर करने तथा उसे खाद्य प्रसंस्करण, सौंदर्य प्रसाधन और औषधि क्षेत्र में इस्तेमाल करने की पर्याप्त संभावना है। परंतु किसानों द्वारा तिलहन फसलों में निवेश करने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए जरूरी है कि लाभकारी कीमत सुनिश्चित की जा सके। आयात को कम करके सस्ते खाद्य तेल की आवक को रोकना इस दिशा में एक कदम साबित हो सकता है।

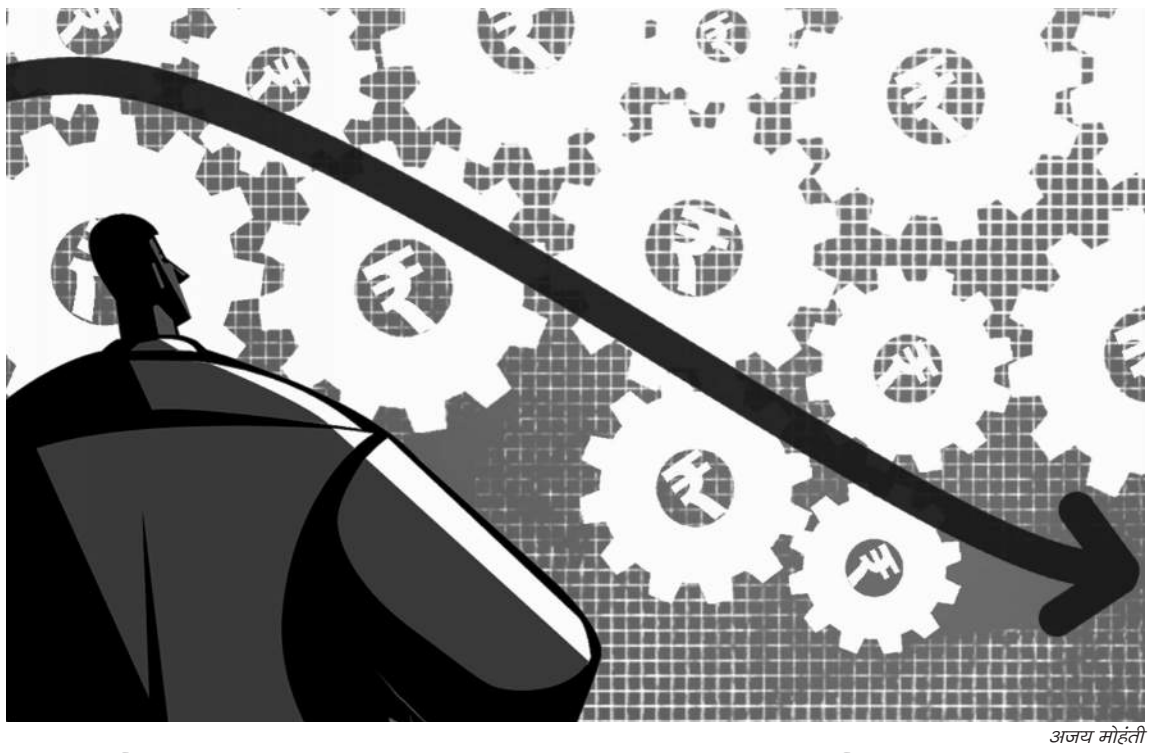

अजय मोहंती

वृद्धि रुझान की फिक्र करें, चक्र की नहीं

नब्बे के दशक से शुरू हुआ उच्च वृद्धि का दौर दो दशक तक चलने के बाद 2011 तक आते-आते शिथिल पड़ गया। इसकी पृष्ठभूमि एवं कारणों की पड़ताल कर रहे हैं **अजय शाह**

वृहद-आर्थिक परिणामों को दीर्घावधि रुझान बनाम अल्पावधि कारोबारी चक्र अनियमितता में बांट देना उपयोगी है। भारत की विकास कहानी में 2011-12 के दौरान वृद्धि रुझान गिरावट पर आ गया था। इससे जुड़ा पहलू यह है कि हमें कारोबारी चक्र परिस्थितियों में पतन देखना पड़ा था। ये दोनों परिघटनाएं आज एक साथ घटित हो रही हैं। भारत में वृहद-आर्थिक नीति के परंपरागत साधन अस्पष्ट हैं और वृद्धि रुझान में गिरावट पर यह ज्यादा फर्क नहीं डाल पाते हैं। भारतीय अर्थशास्त्र में सबसे अहम सवाल वृद्धि रुझान में गिरावट को समझने और उसे पलटने का है।

भारत में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के आकलन से जुड़ी कई समस्याएं हैं। हम मजबूत आंकड़ों से काफी कुछ सीख सकते हैं। अर्थव्यवस्था पर नजर रखने वाली संस्था सीएमआईई के आंकड़े करीब 50,000 फर्मों पर निगाह रखते हैं और इससे आधुनिक क्षेत्र के बारे में एक तस्वीर उभरती है। हम अर्थव्यवस्था के सबसे महत्त्वपूर्ण घटक निजी गैर-वित्तीय फर्मों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। वर्ष 1990-91 से लेकर 2011-12 की अवधि में उच्च वृद्धि का दौर रहा था लेकिन उसके बाद वृद्धि दर में नीचे का रुझान है।

बिक्री में वृद्धि के आंकड़ों से हम शुरुआत करते हैं। 1991 से 2011-12 की अवधि में नॉमिनल बिक्री वृद्धि प्रति वर्ष औसतन 16.4 फीसदी रही। उसके बाद के सात वर्षों में यह दर गिरकर 10.5 फीसदी प्रति वर्ष हो गई। निवेश को जांचने का बढ़िया तरीका शुद्ध अचल संपत्तियों की प्रतिशत वृद्धि है। वर्ष 1990-91 से 2011-12 के दौरान इसकी औसत वृद्धि दर 17.4 फीसदी थी और उसके बाद के सात वर्षों में यह अपेक्षाकृत कम 10.3 फीसदी रहा है। यह वृद्धि रुझान में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव है।

दीर्घावधि वृद्धि रुझान से जुड़ी हुई कारोबार चक्र अनियमितता की परिघटना है। ये कम समय तक चलने वाला उफान और गिरावट है, जो फर्मों के जरिये स्टॉक-निवेश-लाभपरकता की अनिश्चितता का सदाबहार चक्र है। हमारी यहां और अब समस्या 2018 के अंत में शुरू हुए कारोबारी चक्र हालात में पतन है। कारोबार चक्र की उठापटक को कुछ हद तक वृहद-आर्थिक नीति के परंपरागत तरीकों- राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति से भी साधा जा सकता है। हममें से कई लोग समष्टि अर्थशास्त्र की अंतरराष्ट्रीय किताबें पढ़ते रहे हैं और हममें इस निष्कर्ष पर पहुंचने की प्रवृत्ति होती है कि समष्टिवादी नीति के साधन कारोबार चक्र अनिश्चितता से मुकाबले में कारगर हैं।

हालांकि भारत की स्थिति में हमें अपनी आकांक्षाओं को लेकर बहुत सीमित होना चाहिए। भारत में राजकोषीय नीति इस तरह से नहीं बनी है जो स्थिरीकरण में मदद करे। वर्ष 2015 में मुद्रास्फीति को काबू में रखने की शुरुआत होने से पहली बार मौद्रिक नीति कारोबार चक्र स्थिरीकरण में मदद मिलने लगी है। जब भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) उपभोक्ता मूल्य सूचकांक आधारित मुद्रास्फीति को चार फीसदी के नीचे रखना चाहती है तो इससे कारोबारी चक्र उठापटक पर काबू पाने के लिए नीतिगत दरों में कभी तेजी तो कभी नरमी के हालात बनेंगे। उसी के साथ हमारे पास एक अल्पविकसित वित्तीय प्रणाली होने से आरबीआई की क्षमता भी सीमित है।

हमें मुद्रास्फीति नियंत्रण का काम ठीक से करना चाहिए लेकिन हमें यह भी पता होना चाहिए कि भारत में इसकी क्षमता कम है और हमें पता होना चाहिए कि भारत में राजकोषीय नीति समष्टि-अर्थशास्त्रीय स्थिरीकरण का हिस्सा नहीं है। नतीजतन, किताबों की तरह भारत में वृहद आर्थिक नीति के जरिये स्थिरीकरण नहीं हो पाता है। वैसे हमें बहुत निराश होने की जरूरत नहीं है। कारोबार चक्र की हरेक गिरावट के बारे में एक बात अच्छी है कि अगर उसे यूं ही छोड़ दें तो वह खुद-ब-खुद ठीक हो जाएगी। भारत में कारोबारी उठापटक का लंबा इतिहास हमें आश्वस्त करता है कि वृहद नीतियों के निष्प्रभावी एवं भ्रमित होने के बावजूद अतीत में गिरावट थम गई।

इससे कहीं बड़ी समस्या वृद्धि रुझान में गिरावट है जिस पर हमें फिक्र करनी चाहिए। आज भारतीय अर्थव्यवस्था में सबसे अहम सवाल यह है कि 1990 से 2011 के दौरान हमारी वृद्धि इतनी ऊंची क्यों थी और फिर 2011 के बाद इसमें गिरावट का रुझ क्यों रहा? इस समस्या को समझ पाने में हम जिस हद तक कामयाब होते हैं और ठोस बौद्धिक समझ के आधार पर अपने रास्ते बदल पाते हैं तो वह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होगा।

इस प्रक्रिया में हमें कारण और प्रभाव की सरलीकृत धारणाओं से परहेज करना चाहिए। इस बात का खतरा है कि 1991 में शुरू हुए उच्च वृद्धि के सिलसिले के लिए जुलाई 1991 के बजट भाषण को श्रेय दिया जाए। इसी तरह इस उफान के खत्म होने के लिए प्रणव मुखर्जी के 2011 के बजट भाषण को जिम्मेदार मानने का भी खतरा है। लेकिन इस पैमाने की सामाजिक परिघटना साधारण व्याख्या से रोकती है। वृद्धि रुझान में बदलाव ऐतिहासिक कारणों और कई वर्षों की मानव गतिविधियों का सामूहिक नतीजा रहा है।

1991-2011 बूम की बुनियाद कई कारकों ने रखी थी। भारतीय समाजवाद से दूर जाती आर्थिक नीति का भी इसमें योगदान रहा है। वर्ष 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद से 1991 तक कई कदम उठाए गए। जुलाई 1991 में बजट भाषण इस दिशा में नाटकीय बदलाव लाने वाला साबित हुआ।

इसी अंदाज में इस वृद्धि प्रकरण का अंत 2011-12 में मानव कृत्यों से नहीं हुआ था। जब भारत की जीडीपी काफी बढ़ गई तो हमारे संस्थान बड़ी एवं अधिक जटिल अर्थव्यवस्था से निपटने में नाकाफी रहे थे। एक परिष्कृत निजी अर्थव्यवस्था को आपराधिक न्याय व्यवस्था, विवाद निपटान, न्यायपालिका, आर्थिक नियमन और कर प्रणाली में काबिलियत की जरूरत होती है। इसके लिए आर्थिक आजादी एवं राजनीतिक स्वतंत्रता के इर्दगिर्द बुनी लोक नीति के मूल्यों की जरूरत होती है। लेकिन हम वर्ष 2014 में दो लाख करोड़ डॉलर की जीडीपी पर सिमटकर रह गए जिसकी संस्थागत क्षमता 1982 की 20 हजार करोड़ डॉलर अर्थव्यवस्था लायक ही थीं।

समय बीतने के साथ निजी क्षेत्र की जरूरतों एवं संस्थाओं की क्षमताओं के बीच असंतुलन लगातार बिगड़ता गया। इस बढ़ते असंतुलन ने 2011-12 में वृद्धि प्रकरण का अंत कर दिया।

इस वृद्धि प्रकरण के माध्यम से निजी कारोबारियों की नजर में उम्मीद एवं अनुभव के बीच तनाव देखा गया। उस दौरान संस्थानों के कामकाज में कई कमजोरियां थीं। हालांकि निजी स्तर पर लोग अपने अविश्वास को तिलांजलि देने को तैयार थे और वे यह मानना चाहते थे कि आज हालात खराब होने के बावजूद वे सही दिशा में आगे बढ़ रहे हैं और सरकार की तरफ से समय-समय पर विपदा खड़ी करने पर समाधान निकाल लिया जाएगा। भारत के प्रति प्रतिबद्ध होने, भारत में ही कारोबार खड़ा करने और भारत में वित्तीय पूंजी निवेश करने के साथ यह मान्यता भी थी। वर्ष 2011-12 तक बदल जाने वाली बात यह थी कि इस आशावाद का क्षय हो गया।

चार दिन का कामकाजी हफ्ता अभी महज आकांक्षा ही रहेगा

इंसानी पहलू

श्यामल मजूमदार

फिनलैंड की युवा प्रधानमंत्री सना मारिन ने चार कार्य दिवस के सप्ताह को अपना समर्थन देकर दुनिया भर के कर्मचारियों का दिल जीत लिया है। इस घोषणा से कर्मचारियों को होने वाले लाभ पूरी तरह स्पष्ट हैं: बिना कामकाजी दायित्व का एक और दिन मिलने के साथ ही उन्हें सफर भी नहीं करना पड़ेगा। इससे उनके पास अधिक व्यक्तिगत समय होगा जिससे उनके तनाव में कमी और उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है।

कुछ वैश्विक कंपनियां पहले ही चार दिन का सप्ताह लागू कर बढ़िया नतीजे हासिल कर चुकी हैं। माइक्रोसॉफ्ट ने जापान में इसे गत अगस्त में लागू किया था और इस दौरान अपनी बिक्री में 40 फीसदी वृद्धि होने का दावा किया। इस प्रयोग के अन्य लाभ भी हैं। कंपनी का बिजली उपभोग एक चौथाई तक गिर गया और मुद्रित किए गए कागजों में भी 59 फीसदी गिरावट आई। दूसरी कंपनियों ने भी चार दिन के कामकाजी सप्ताह की दिशा में प्रायोगिक परीक्षण किए हैं और उन्हें भी ऐसे ही नतीजे मिले हैं। हार्वर्ड बिज़नेस रिव्यू में एक और परीक्षण के बारे में प्रकाशित रिपोर्ट भी बताती है कि छोटे कामकाजी सप्ताह में उत्पादकता बढ़ गई।

इन परिणामों से अचरज नहीं होना चाहिए क्योंकि खुशहाल कर्मचारी कंपनी की समग्र समृद्धि में योगदान देते हैं। असल में, समूचे इतिहास में यह देखा गया है कि कामकाजी घंटे कम होने पर उत्पादकता बढ़ी है। हेनरी फोर्ड ने 1926 में जब पांच दिन का कार्य सप्ताह लागू किया तो उन्हें भी ऐसे नतीजे मिले थे। फोर्ड 40 घंटे का कार्य सप्ताह लागू करने वाली शुरुआती कंपनियों में से एक है। उसके चार साल बाद केलॉग ने जब एक दिन में छह घंटे की ड्यूटी लागू की तो कारखाने में होने वाले हादसे 40 फीसदी तक कम हो गए।

सवाल उठता है कि क्या कंपनियों को चार दिवसीय कार्य सप्ताह के बारे में गंभीरतापूर्वक सोचने का वक्त आ गया है? दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से इसका जवाब ना है। यहां तक कि फिनलैंड भी ऐसा कुछ करने की नहीं सोच रहा है। मारिन की घोषणा के बाद जिस तरह से धन्यवाद देने वाले संदेशों की भरमार हुई तो उनके कार्यालय को यह सफाई देने के लिए आगे आना पड़ा कि चार दिन का हफ्ता सरकारी योजना का हिस्सा नहीं है और निकट भविष्य में ऐसा होने की संभावना भी नहीं है। लोगों की निराशा उस समय और बढ़ गई जब यह पता चला कि मारिन ने यह बयान प्रधानमंत्री बनने के पहले दिया था और यह महज आकांक्षा-जनित बयान था।

हफ्ते में चार दिन काम कर पूरा वेतन लेने वाले कर्मचारियों का विचार व्यवहार्य नहीं होने के पीछे एक वजह है। कार्यदिवसों में कोई भी कटौती तब तक बर्दाश्त नहीं की जा सकती है जब तक उत्पादकता में आनुपातिक वृद्धि या वेतन में समान कटौती न की जाए। यह सच है कि कर्मचारियों को बढ़ी उत्पादकता और मनोबल के संदर्भ में कुछ लाभ मिलेंगे लेकिन चार दिन के कामकाजी हफ्ते से मुनाफा बढ़ने की संभावना होने पर ही कोई कंपनी इसे लागू करेगी।

एक और समस्या यह है कि चार-दिवसीय कार्य सप्ताह को सेवा क्षेत्र में लागू करना मुश्किल हो सकता है जहां ग्राहकों की जरूरतों का ध्यान रखना पड़ता है। ब्रिटेन में लेबर पार्टी समर्थित एक अध्ययन ने थकावट बढ़ने को लेकर आगाह भी किया क्योंकि अनुबंधित कर्मचारियों पर इन चार दिन में काम का बोझ रहेगा। इसके अलावा अकुशल एवं अस्थायी कामगारों पर इसका नकारात्मक असर भी पड़ेगा क्योंकि उन्हें घंटों के हिसाब से भुगतान होता है।

इसकी वजह यह है कि नियोक्ताओं का काम हफ्ते के पांचों दिन आठ घंटे प्रतिदिन के पूर्णकालिक कार्य-सप्ताह से कम पर नहीं चल सकता है। अगर वे चार दिवसीय सप्ताह अपनाते हैं तो कर्मचारियों को रोजाना 10-10 घंटे काम करना होगा। ऐसे में लोग हफ्ते में एक और दिन का अवकाश मिलने से खुद को तरोताजा महसूस कर सकते हैं लेकिन एक दिन में काम पर लंबा वक्त बिताने से उनकी उत्पादकता कम भी हो सकती है।

अमेरिका में तकनीकी क्षेत्र की बड़ी मानव संसाधन फर्म ट्रीहाउस ने वर्ष 2016 में चार-दिवसीय सप्ताह लागू किया था लेकिन प्रतिस्पर्द्धा में टिक पाना मुश्किल होने पर वह फिर से पांच-दिवसीय सप्ताह की तरफ लौट आई। ट्रीहाउस के मुख्य कार्यकारी रेयान कार्सन ने दी वाशिंगटन पोस्ट से कहा था, 'अगर आप अपने प्रतिस्पर्द्धियों की तुलना में 80 फीसदी वक्त ही काम कर रहे हैं तो मुकाबला कर पाना खासा मुश्किल हो जाता है।'

मोटे तौर पर यह साफ है कि एक सप्ताह में कुल कामकाजी घंटों को नीचे लाने की जरूरत है। शोध से पता चला है कि हफ्ते में 50 घंटे से अधिक काम करने पर कर्मचारी के योगदान में गिरावट आती है और 55 घंटे के बाद तो यह धराशायी ही हो जाता है। शोध बताते हैं कि जो कर्मचारी हफ्ते में 70 घंटे तक काम करते हैं वे असल में अतिरिक्त 15 घंटों में कोई उत्पादक काम नहीं करते हैं। यह साक्ष्य है कि दफ्तर में देर रात तक समय बिताने का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि योगदान बढ़ा ही है और इससे समझदार कर्मचारी भी हाशिये पर धकेले जा सकते हैं।

खतरा यह है कि मुख्य कार्याधिकारी के आसपास ऐसे मल्टी-टास्किंग, तीव्रगामी 'जॉम्बी' इकट्ठा हो जाएंगे जो यह सोचे बगैर हमेशा लिफ्ट का बटन दबाते रहते हैं कि इससे लिफ्ट काम करना बंद कर देगी।

लेकिन भारतीय कंपनी जगत चार दिवसीय कार्य सप्ताह इसलिए नहीं लागू कर सकता है कि यह काफी महंगा है। इस तरह की सोच पर अमल करने का सीधा मतलब है कि आपको नए कर्मचारी रखने होंगे और ऐसा कर पाना उनके लिए आर्थिक रूप से सही नहीं होगा। इस तरह मौजूदा समय में यही बेहतर है कि कंपनियां अपने कर्मचारियों को कामकाज के लचीले घंटे और घर से काम करने की छूट दें और चार दिन के हफ्ते को फिलहाल आकांक्षा ही रहने दें।

कानाफूसी

छोटे दलों की भरमार

दिल्ली विधानसभा चुनाव के बारे में माना जा रहा है कि वहां आम आदमी पार्टी और भारतीय जनता पार्टी के बीच सीधी लड़ाई है। कुछ लोग कांग्रेस को भी इस लड़ाई में शामिल मान रहे हैं। इस बीच इन चुनावों में अपनी किस्मत आजमा रहे छोटे दलों की भी कोई कमी नहीं है। भारतीय जनता पार्टी के एक सहयोगी लोक जनशक्ति पार्टी ने भी कहा है कि वह सभी 70 सीटों पर चुनाव लड़ेगी। उसने 15 प्रत्याशियों की सूची भी जारी कर दी है। इतना ही नहीं जनता दल यूनाइटेड और राष्ट्रीय जनता दल समेत बिहार के कुछ अन्य राजनीतिक दलों के साथ-साथ उत्तर प्रदेश में मजबूत मानी जाने वाली समाजवादी पार्टी भी यहां चुनाव मैदान में उतर सकती है। हरियाणा में भाजपा की साझेदार जननायक जनता पार्टी भी सीमावर्ती इलाकों में अपने प्रत्याशी उतारने पर विचार कर रही है।

जातीय समीकरण

उत्तर प्रदेश में राजनीतिक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। खासतौर पर कांग्रेस महासचिव प्रियंका गांधी ने भी प्रदेश की आदित्यनाथ सरकार के खिलाफ हमले तेज कर दिए हैं। इस बीच बहुजन समाज पार्टी की अध्यक्ष मायावती ने लोकसभा में पार्टी के नेता दानिश अली को हटाकर उनकी जगह रीतेश पांडेय को लोकसभा में पार्टी का नेता बनाया है। जाहिर है उनकी कोशिश ब्राह्मणों को अपनी ओर आकर्षित करने की है। दिलचस्प बात है कि आठ महीनों में चौथी बार मायावती ने ऐसा बदलाव किया है। मायावती का कहना है कि हालिया बदलाव जातीय संतुलन कायम करने के लिए किया गया है क्योंकि एक अन्य मुस्लिम नेता पहले से पार्टी की उत्तर प्रदेश इकाई के अध्यक्ष हैं। हालांकि उनके आलोचकों की दलील है कि ऐसे तो एक अन्य ब्राह्मण सतीश चंद्र मिश्रा भी पार्टी के राष्ट्रीय महासचिव हैं।

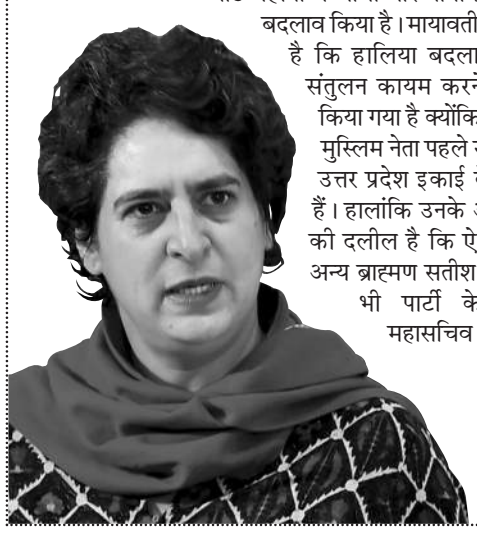

आपका पक्ष

न्याय प्रक्रिया में तेजी लानी होगी

हाल में आई एनसीआरबी की एक रिपोर्ट के अनुसार भारतीय जेलों में कैदियों की संख्या उनकी क्षमता से 17.6 प्रतिशत (69,861) अधिक है। अगर राज्यवार जेलों की बात की जाए तो उत्तर प्रदेश में 76.5 प्रतिशत और सिक्किम में 57.3 प्रतिशत क्षमता से अधिक हैं। इस रिपोर्ट के अनुसार 31 दिसंबर, 2018 तक कुल कैदियों की संख्या 4,66,084 थी जिनमें से 30 प्रतिशत (1,39,488) दोषी करार दिए गए हैं, जबकि 69 प्रतिशत (3,23,537) कैदी विचाराधीन हैं। ये आंकड़े हमारी न्यायिक प्रक्रिया के साथ सरकार की कार्यप्रणाली पर भी सवाल खड़े करते हैं। इसके लिए पुलिस की कार्यप्रणाली से लेकर न्यायाधीशों की कमी जैसे सभी महत्त्वपूर्ण कारण हैं। समय-समय पर मानवाधिकार आयोग और शीर्ष न्यायालय भी जेलों में कैदियों की स्थिति को लेकर चिंता जाहिर कर चुके हैं। ऐसी स्थिति

में सरकार के साथ राज्य सरकारों को चाहिए कि न्यायालयों में न्यायाधीशों की कमी और मूलभूत अवसंरचना की कमी को दूर करे और पुलिस को भी निष्पक्ष होकर अपने कार्यों को उचित समय में प्रभावी ढंग से करना चाहिए जिससे विचाराधीन कैदियों की संख्या को कम किया जा सके। इसके अलावा सरकार को जेलों

सरकार को न्यायालयों और न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने पर विचार करना चाहिए

की संख्या बढ़ाने, अन्य जेलों में क्षमता से अधिक रह रहे कैदियों को नई बनी जेलों में स्थानांतरित करने की जरूरत है।

सचिन यादव, अंबेडकर नगर

अर्थव्यवस्था में सुधार के कदम

भारत को आर्थिक मंदी दूर करने के उपाय करने चाहिए। कल कारखाने लगाकर बेरोजगारी दूर करने के लिए पहल करनी चाहिए। देश में शिक्षा के स्तर में सुधार की जरूरत है तभी देश आर्थिक रूप से मजबूत हो सकता है। देश में सार्वजनिक परिवहन के साथ माल ढुलाई की व्यवस्था में सुधार की भी जरूरत है। ई-कॉमर्स को बढ़ावा देने की भी जरूरत है क्योंकि इससे लाखों लोगों की आजीविका जुड़ी हुई है। देश की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने की जरूरत है क्योंकि जीडीपी दर कम हो गई है। मनोरंजन के क्षेत्र को भी बढ़ावा देने की जरूरत है। इन सभी सुधारों के साथ देश की अर्थव्यवस्था को गति दी जा सकेगी।

राकेश जैन, सतना

एनआरसी से बढ़ेगा अर्थव्यवस्था पर बोझ

राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनआरसी) और नागरिकता संशोधन कानून के लगातार हो रहे विरोध के बीच डिटेंशन सेंटर का नाम उभर कर सामने आया है। डिटेंशन सेंटर वह स्थान है जहां अवैध रूप से भारत में रह रहे लोगों को रखा जाता है। केंद्र सरकार के लिए एक चिंतनीय मुद्दा यह भी है कि अगर पूरे भारत में एनआरसी लागू किया जाता है तो क्या जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को डिटेंशन सेंटर में रखने की व्यवस्था हो पाएगी। अगर सरकार एनआरसी लागू करने की योजना बना रही है तो अनेक समस्याओं का समाधान खोजना होगा। एक तरफ एक बड़ी आबादी को रखने की समस्या है, वहीं भारत की अर्थव्यवस्था भी बिगड़ी है। ऐसे में देशभर में एनआरसी कराने पर अर्थव्यवस्था पर अनावश्यक बोझ बढ़ेगा जो उचित नहीं है।

अनु मिश्रा, सीवान

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।